प्रवचन नं. ५१ श्लोक-४ ता. ४-८-७८ शुक्रवार श्रावण सुदी-१ सं.२५०४

कलश फिर से लें यह कल हिन्दी था न, आज गुजराती (लेते है) निश्चय और व्यवहार - इन दोनों नयों को विषय के भेद से परस्पर विरोध है। है ? (श्रोता :- इसमें लिखा है परंतु हमें समझ में आता नहीं) अभी तो अर्थ कहाँ किया है। परंतु अभी तो भाई को कहा वहाँ पुस्तक में पेज है कि नहीं ? इतना अर्थ किया नहीं अभी, आहाहा ! क्या कहते हैं ? `निश्चय और व्यवहार दो नयों के विषय के भेद से परस्पर विरोध है। इस विरोध को नाश करनेवाला स्याद्पद से चिन्हित् जिनभगवान

का वचन, उसमें जो पुरुष रमते है' अब यहाँ तक का अर्थ। कि जिनवचन में... मूल तो जिनस्वरूप जो वस्तु है। आत्मा का जिनस्वरूप ही है। (श्रोता :- तब दिखता क्यों नहीं)

यही, यही बात चलती है, देखे वह पर्याय वीतरागी है। यह वीतरागी पर्याय है यह व्यवहार है और त्रिकाली जिनस्वरूप है वह निश्चय है। जैन धर्म कोई पक्ष नहीं। जैन धरम यह वस्तु का स्वरूप है, अर्थात कि यह जिनस्वरूप ही आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। दूसरी भाषा में कहें तो आत्मा मुक्त स्वरूप है। समझ में आता है कुछ? मुक्त स्वरूप है तो - ऐसा कहें कि यह निर्वाण स्वरूप ही है। आहाहा ! सूक्ष्मबात है ! यह किसी दिन सुनी नहीं कुछ बाहर। आहाहा !

अनादि (से) अनंत तीर्थंकरों, अनंत केवलियों अनंत संतो हुए है और होंगे, जो यह आत्मा जिनस्वरूप है उसका अनुभव करना यह मार्ग जैनशासन है। यह जैनधर्म है परंतु अनुभव करना वह पर्याय है और त्रिकाली स्वरूप वह जिन है। पर्याय अर्थात अवस्था हालत-वर्तमानदशा और वस्तु त्रिकाल-त्रिकाल, यह त्रिकाल जो वस्तु है वह वीतरागस्वरूप ही है। मुक्त स्वरूप ही है। आहाहाहा ! यह वीतराग स्वभाव स्वरूप ही आत्मा है, सभी भगवानआत्मा है। आहाहा !

यह वीतरागस्वरूप है, आत्मा उसका अनुभव करना वह पर्याय हुई, तब स्यात् आत्मा नित्य है, इस अपेक्षा से, क्योंकि जो त्रिकाली वस्तु है, जिनस्वरूप वीतरागस्वरूप भगवत् स्वरूप मुक्तस्वरूप, यह जिनस्वरूप। उसका आश्रय लेकर जो अनुभूति की पर्याय प्रगट होती (है) वह अनित्य है, क्षणिक है, अवस्था है। तो स्याद्पद कहकर कथंचित त्रिकाली नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से तो वह अनित्य है, समझे कुछ? आहाहा ! जैनधर्म अर्थात सर्व व्यापक अर्थात यह जिनस्वरूप ही भगवानआत्मा, यह तो कहा था न, घट-घट अंतर जिन बसे। ***`जिनस्वरूप ही प्रभु है। वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा ! यह नित्य है और उसका अनुभव करना, यह अनित्य है। तब स्यात् नित्य और स्यात् अनित्य इस प्रकार कहते हैं। फिर भी यह (विरोध को) नाश करनेवाला `स्यात्' है।***

`जिनवचसिरमन्ते' अब जिनवचन में रमे अर्थात क्या ? जिनवचन में कहा हुआ जिनस्वरूप जो आत्मा उसमें जो रमे, रमे यह पर्याय हुई, त्रिकाली स्वरूप वह नित्य हुआ, आहाहाहा ! और जो त्रिकाली स्वरूप है... मार्ग बापा अलग जाति का है। यह जैनधर्म कोई पक्ष नहीं कोई गुटबंदी नहीं। यह वस्तु का स्वरूप ही - ऐसा है। भगवान आत्मा। आहाहा ! मुक्त जिनस्वरूप से विराजमान है। उसका अनुभव करना, उसका अनुभव करने में राग और निमित्त की अपेक्षा है ही नहीं, कि - ऐसा

इसे व्यवहार हो तो अनुभव हो ! देवीलालजी ! आहाहा !

क्योंकि जो वीतरागस्वरूप है उसमें अकार्यकारण नाम का गुण वीतरागस्वरूप से पड़ा है। क्या कहा यह ? जिनस्वरूप भगवानआत्मा, उसमें एक अकार्यकारण नाम का वीतरागी स्वभाव गुण मौजूद है। अतः उसके वीतराग स्वभाव को, चैतन्य त्रिकाली स्वभाव को... आहाहाहा ! अनुभव करने में, वीतरागपने की पर्याय प्रगट करने में, जिनस्वरूप है उसकी अपेक्षा भले हो, निमित्त अपेक्षा, लक्ष्य अपेक्षा भी उसे किसी कारण व्यवहार - ऐसा हो तो यह निश्चय से अनुभव हो - ऐसा इसके स्वरूप में नहीं, इसलिये उसकी पर्याय में भी - ऐसा नहीं। क्या कहा यह ? आहाहा !

जैन वस्तु है यह स्वरूप (से) जैन है, जिन है। अब यह जिन जैन हो, जब यह जिन का अनुभव करे, तब जैन हो। जयसुखभाई ! लोजिक से तो बात चलती है परंतु अब क्या हो ? अरे प्रभु का मार्ग। आहाहा ! अनंत तीर्थंकरों अनंत केवली हुये है और होंगे उनका एकप्रकार यह है कि दो नय अर्थात ? त्रिकाली चीज है, यह वीतरागस्वरूप है। उसका अनुभव करना यह पर्याय का स्वरूप है। यह पर्याय यह भी वीतरागस्वरूप है। इस वीतरागस्वरूप की पर्याय को, पर के कारण की अपेक्षा नहीं, कि व्यवहार - ऐसा हो तो इससे हो यह बात ही एकदम झूठी है आहाहाहा !

उसका व्यवहार निर्मल पर्याय कैसे प्रगटे ? कि त्रिकाली जिनस्वरूप है उसका दृष्टि में जहाँ स्वीकृति हो तब ज्ञान में उसका अनुभव हो, यह अनुभव पर्याय है, और यह वीतरागी पर्याय है। ***एक बात, और उसके जिनस्वरूप में अकार्यकारण नाम का एक गुण है, यह वीतरागीगुण है। अकार्यकारण नाम का एक गुण है आत्मा में, यह वीतरागी गुण है। आहाहा ! इस वीतरागी गुण को... गुण का आश्रय (दाता) द्रव्य है, परंतु इस द्रव्य का आश्रय करने पर इसमें गुण का अकार्य कारणपना भी पर्याय में आ जाता है। उसकी जो वीतरागी पर्याय है, उसे व्यवहार कारण और निर्विकारी पर्याय कार्य- ऐसा पर्याय का स्वभाव नहीं।*** आहाहाहा ! यह सभी प्रश्न थे न ! पहले - ऐसा हो और - ऐसा हो - ऐसा विकल्प हो कि यह सभी बातें। आहाहाहा !

जैसे यह जिनस्वरूप प्रभु है इसे कोई अपेक्षा नहीं, कोई इसका कर्त्ता है कि इससे बना है कि इस समय हुआ है - ऐसा है कहीं ? वस्तु जो है भगवान ! जिनस्वरूपी परमेश्वर, स्वरूप इसे कोई अपेक्षा नहीं, यह तो है है और है। आहाहा ! ऐसे परमेश्वर स्वरूप का आश्रय लेकर के अर्थात उसकी तरफ लक्ष्य करके... जो पर्याय प्रगट होती, वीतरागी पर्याय, सम्यग्दर्शन यह वीतरागी पर्याय है, सम्यग्ज्ञान यह वीतरागी ज्ञान है और उसमे स्वरूप की स्थिरता यह वीतरागी आचरण है। आहाहाहा !

इस पर्याय में भी अकार्यकारण गुण की पर्याय आयी। इस पर्याय को राग कारण और पर्याय कार्य - ऐसा पर्याय का स्वरूप नहीं। द्रव्य का स्वरूप तो नहीं। आहाहाहा ! गजब बात है। लोगों को व्यवहार से हो और निमित्त से बापू यह जैन धर्म ही नहीं। यह जैन धर्म को जानते ही नहीं। आहाहा ! व्यवहार हो, वह तो जानने के लिये होता परंतु यह तो जानने की पर्याय जो स्व के आश्रय से प्रगट हुई इस जाननेरूप पर्याय में स्वपरप्रकाशकपना स्वयं से प्रगट होता है, उसमें यह रागादिक हों यह जाने, परंतु यह कोई वस्तु आदरणीय है कि इससे यह पर्याय प्रगटी है - ऐसा है नहीं आहाहाहा ! समझे कुछ ?

यह कहते हैं, कि जो जिनभगवान का वचन अर्थात कि जिन भगवान के वचन में जिनस्वरूप है वह आदरणीय है - ऐसा बताया। जिनवचन में जो वस्तु त्रिकाली है, क्यों ? कि उसे आदरणीय बताया इसमें दोनों आ गये एक तो त्रिकाली वस्तु आयी, और आदर करनेवाली पर्याय भी आ गयी। आहाहा ! परंतु यह जिसका आदर करना है, यह जिनस्वरूप यह वीतरागस्वरूप है। आहाहा ! इसलिये इसमें पर्याय में भी वीतरागता ही प्रगट होती है यह जैनधर्म का अनादि स्वरूपरूप है, इसमें आड़ा-टेड़ा कुछ करने जाय तो यह जैनधर्म नहीं। आहाहाहा ! समझे कुछ ? यह पर्याय जो है, और नहीं थी वह प्रगटी... वस्तु तो है त्रिकाल, मुक्त स्वरूप ही है। आता है न ? `मुक्त एव' वस्तु मुक्त कहो, सिद्ध स्वरूप कहो, निर्वाण स्वरूप कहो, मोक्ष स्वरूप कहो, वीतराग स्वरूप कहो, अकेला परमानंद की शक्ति का सागर कहो, आहाहा ! - ऐसा जो भगवानआत्मा यह जिनस्वरूप है। आहाहाहा ! गजब बात करते हैं।

इसकी भाषा वीतराग तो देखो, आहा ! उनकी वाणी में... जिनवचन में रमना अर्थात कहीं वाणी में रमना नहीं शब्द तो यहाँ - ऐसा है। `जिनवचसिरमन्ते' परंतु जिनवचन में, जिनस्वरूप जो है भगवानआत्मा वह आदरणीय है, उपादेय है - ऐसा जिनवचन में कहा है। उसमें रागादिक आये वह आदरणीय है, निमित्त आदरर्णीय है - ऐसा जिनवचन में नहीं। आहाहा ! समझे कुछ ? उसी प्रकार उसके वस्तुस्वरूप में नहीं। जिनवचन कहते हैं यह कहीं बेकार कहते हैं ? वस्तु स्वरूप ही - ऐसा है, कि वीतरागमूर्ति स्वयं पर की किसी अपेक्षा बिना यह चीज अनादि अनंत शाश्वत है। ***उसकी अपेक्षा करके जो कोई पर्याय प्रगट होती है, इसको भले इसकी अपेक्षा कहो द्रव्य की, परंतु पर की कोई अपेक्षा ही नहीं उसे।*** आहाहाहाहा ! वस्तु तो यह है। समझे कुछ ? आहाहाहा !

जैनधर्म कोई संप्रदाय नहीं, पक्ष नहीं कि भाई हम जैन हैं और तुम अन्य हो न ! आहाहाहा ! जिनस्वरूपी भगवान है, उसे उपादेय रूप में जानकर पर्याय में

वीतरागता प्रगट करना, आहाहा ! यह जैनधर्म ! जिनस्वरूप वस्तु ! इसमें कहीं मिले - ऐसा नहीं, वहाँ दवाखाना और डॉक्टर... आहाहा ! वस्तु तो देखो ! आहाहा ! भगवान `जिन सो ही यह आत्मा, अन्य सो ही कर्म, कर्म कटे जिनवचन से' - ऐसा श्रीमद् ने कहा। वचन सो शब्द अर्थात भाव... जो स्वरूप है जैन, वीतराग अकषाय स्वरूप की मूर्ति प्रभु है। उसके आश्रय से वीतरागता होती है, वह वीतरागता कर्म का नाश करे, यह भी व्यवहार है। नाश करता हैं यह। आहाहाहा ! समझ में आया ? (श्रोता :- कठिन कहते और फिर पूँछते कुछ समझ में आया ?) परंतु धीरे-धीरे तो कहते हैं इसमें कहीं भी... वस्तु ही ऐसी है वहाँ दूसरा क्या ? आहाहा ! आत्मा जिनबिम्ब है। उसमें आता है न भाई ! जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्ति और निकाचित कर्म टलें, बापू ! आहाहाहा ! धवला में (आता) आहाहा ! यह तो निमित्त का कथन है। आत्मा जिनबिम्ब प्रभु है। भाई आत्मा क्या है ? यह वीतरागी गुणों का पिण्ड प्रभु ! वीतरागी बिम्ब है यह। यह वस्तु का स्वरूप यह है। जैनधर्म यह है और अमुक है यह, यह जैनधर्म अर्थात (वस्तु स्वभाव) ही यह। आहाहा !

वस्तु तो वीतरागीबिम्ब है प्रभु ! द्रव्य, उसके आश्रय से निद्धत और निकाचित कर्मों का नाश तो इनके कारण होता है, परंतु यह निमित्त हैं - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहा ! निमित्त कुछ करता नहीं नाश करने में। आहाहा ! अरे ! - ऐसा मार्ग। सुनने मिले नहीं। जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ, अनंत-अनंत तीर्थंकरों की यह आवाज है। उस दिव्यध्वनि की आवाज यह है। भाई ! तुम्हें हित करना हो... दुःखी तो हो ही रहा है बापू ! आहाहा ! पर के लक्ष्यवाले पुण्य और पाप (रूप) विकारी भाव (करके) दुःखी तो हो रहा है, पर के लक्ष्यवाला। आहाहा ! स्व का लक्ष्यवाला भाव तो वीतरागी हो और पर के लक्ष्यवाले वह सभी रागीभाव, रागभाव हो। समझे कुछ ?

चाहे तो तीनलोक के नाथ तीर्थंकर हों तो - ऐसा कहते हैं कि हमारे लक्ष्य से तो तुम्हें राग होगा प्रभु, क्योंकि हम पर हैं और अपने लक्ष्य से तुम `स्व' हो `जिनस्वरूप' हो, तो तुम्हारे लक्ष्य से तुम्हें वीतरागता होगी और इस वीतरागता की पर्याय में द्रव्य का जो अकार्यकारण नाम का वीतरागी गुण है, उसकी पर्याय प्रगटी, अनंत गुण व्यक्त (प्रगट) हुये न ? आहाहाहाहा ! ***इसलिए इसकी वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान की जो पर्याय वह किसी का कार्य... राग का कार्य, राग कारण और निर्मल कार्य - है नहीं, क्योंकि यह पर्याय स्वयं भी दूसरों के कारण बिना हुई और दूसरे का कार्य करनेवाली यह पर्याय नहीं।*** आहाहाहा ! अर्थात क्या ? आहाहाहा !

यह जो जिनस्वरूप भगवानआत्मा। यह `जिनवचसिरमन्ते' में क्या है ? आहा !

भगवान ने तो यह कहा है, कि पर्याय और द्रव्य दोनों है परंतु अब द्रव्य जो है त्रिकाली वह उपादेय किसमें ? कि पर्यायमें। अतः दोनों सिद्ध हो गये। आहाहा ! जैनधर्म यह तो अनादि सनातन सत्य है। आहाहाहा ! समझ में आता है कुछ ? ***और अन्य (मत) में कहीं जो छाया आयी हो तो यह भगवान की (वाणी की) आयी है। कोई-कोई बात उपनिषद में और बौद्धों में और अमुक में और अमुक में यह तो आहाहा ! परम सत्य सूर्य प्रभु !*** - ऐसा जो भगवानआत्मा। उसके गुण अनंत है, परंतु एक उसके गुण का गुण क्या ? यह गुण अकार्यकारण है उसके गुण की क्या विशेषता ? कि पर्याय में वीतरागता होने में, इस गुण की विशेषता यह है कि पर कारण की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहाहा ! मोहनलालजी ! वहाँ कहीं सुनने में आये - ऐसा नहीं वहाँ कलकत्ता में कहीं न मिले। यह तो उन्होंने कहा था पहले दिन ! - ऐसा मार्ग वीतराग का बापा। आहाहाहाहा !

श्रोता :- पर तो कारण नहीं परंतु उपादान कारण तीन हैं।

उत्तर :- एक ही कारण है, ***यह त्रिकाली, वर्तमान पर्यायभी नहीं यहाँ तो, त्रिकाली उपादान एक ही ध्रुव (है), उसका आदर करने से जो उपादान पर्याय होती उसे चाहे उपादान कहो, निमित्त की अपेक्षा, बाकी यह पर्याय है, यह तो, आहाहा !*** अरे ! भगवान की शैली तो देखो ! आहाहाहा ! जो भगवानआत्मा, अनंतगुणों का एकरूप, उसमें एक अकार्यकारण के गुण का एकरूप, इसलिए इसकी पर्याय में भी, जीव का अनुभव करना, यह अनुभव करने में, उसे अनुभूति के लिए कोई विकल्प और कोई निमित्त और किसी राग की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा ! - ऐसा है।

लोगों को निश्चय निश्चय लगे परंतु बापू ! वस्तु ही निश्चय है - ऐसा निश्चित करनेवाली पर्याय भी साथ में जाती है। यह जिनस्वरूप है यह जाना किसने ? पर्याय जानती है न ? कि द्रव्य जानता है ? आहाहा ! भगवानआत्मा पूर्णवीतरागी बिम्ब प्रभु ! जिनबिम्ब है। यह इस जिनबिम्ब में अकार्यकारणत्व नामक एकगुण है। जिनबिम्ब का एकगुण है। इस गुण की विशेषता कि स्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय होती है उस पर्याय को किसी पर के कारण की अपेक्षा नहीं। - ऐसा अकार्यकारण गुण का गुण है। आहाहा ! बापू मार्ग कोई अलौकिक है और इसवस्तु के अलावा कहीं नहीं, वीतरागमार्ग के अलावा कहीं मार्ग है ही नहीं वीतरागमार्ग तो यह है। आहाहा !

'जिनवचसिरमन्ते' यहाँ तो अर्थ में - ऐसा कहा है देखो ! ऐसे जिनवचन में अपूर्व रमण करे। नय को गौण करके व्यवहार कहा है, अर्थ में है, द्रव्यार्थिक अशुद्ध द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक - ऐसा कहा उसे गौण करके उसे व्यवहार कहते हैं, ऐसे

जिनवचन में रमता है, देखो ? अंदर भावार्थ में। आहाहा ! अरे श्लोक गजब है। आहाहाहा !

यह तो सुबह में याद - ऐसा आ गया है, वह आता है न ? अहमदाबाद के शुक्रवार की शोभा भली आठे टाणे थाय। चढ़ते पौरे चोक में भली बजार भराय, आता है न ? स्कूल में आता (था) स्कूल में पहले आता था। यह शुक्रवार है आज। लो ठीक ! यह बात सच्ची, शुक्रवार में कुछ भी नहीं यों ही कहते, यों ही कहीं होगा। यह वानियां व्यापार व्यापार करते हैं। शुक्रवार हुआ - ऐसा कहते है। शुक्रवार हुआ। शुक्रवार अर्थात यों ही कुछ हुआ ! कहीं धूल में नहीं। यह बेकार, सुनो न भाई जहर का टुकड़ा है वहाँ तो। आहाहा !

आत्मा में वीर्य है अनंत शुक्र, वीर्य आत्मा में है शुक्र। आत्मा में अनंतगुण है उसमें एक वीर्य नामका गुण है। तब यह वीर्यगुण भी दूसरे गुण की अपेक्षा से है - ऐसा नहीं। इस गुण का आश्रय द्रव्य है। तब जिसने द्रव्य का आश्रय लिया, यह जैनधर्म, यह जैनस्वरूप उसका आश्रय लिया, यह जैनधर्म, इस जैनधर्म में उसका जो वीर्य है, शुक्रवीर्य, उसने स्वरूप की रचना की, उस स्वरूप की रचना में पर की कोई अपेक्षा नहीं। समझ में आया ? आहाहाहा !

खण्डवा वण्डवा में - ऐसा कुछ नहीं, वहाँ पिस जायें - ऐसा है। आहाहा ! देखो तो सही प्रभु की वाणी तो देखो ! आहाहा ! इस वाणी में द्रव्य और पर्याय दोनों आये। किस प्रकार ! कि जिनस्वरूप में रमना, जिनस्वरूप है उसे उपादेयकरना - ऐसा वीतरागी वाणी में आया। वहाँ दोनों आ गये। त्रिकाली भगवान को उपादेय किया यह पर्याय, अर्थात पर्याय भी आ गई। आहाहा ! और उस पर्याय की रचना में वीर्य नाम का गुण है वह स्वरूप की रचना वीर्य करते हैं। इस परिणति को राग रचे व्यवहार कषाय की मंदता की क्रिया, अशुभ टालकर शुभ किया, अतः इससे यह पर्याय हुई ! तीनकाल में नहीं। (श्रोता :- पहले कुछ तैयारी करनी पड़ती होगी ?) एक ही तैयारी यह है, दूसरी तैयारी नहीं। राग बिना का भगवान है वहाँ दृष्टि करना यह एक ही उपाय है। कोई दूसरी अपेक्षा है ही नहीं। कैसा विकल्प पहले होता है ? आहाहा ! भगवान की वाणी में यह आया, अनंत तीर्थंकर हो गये, (कुछ) बिराजमान हैं, अनंत होंगे, उनकी वाणी में यह आया, वीतरागस्वरूपी प्रभु तुम्हारा स्वरूप है, यह उपादेय है, इस प्रकार वाणी में आया- ऐसा आने पर दोनों नय आ गये। त्रिकाली है वह निश्चय... आहाहा ! और जो वीतरागी पर्याय प्रगटी वह व्यवहार। उसे व्यवहार के राग की कोई अपेक्षा है नहीं। आहाहाहा ! सुजानमलजी ! आहाहा ! - ऐसा वस्तु का स्वरूप ही है। यह किसी ने बनाया है - ऐसा नहीं वस्तु की

स्थिति ऐसी है। आहाहा ! तब यहाँ झगड़ा यह, व्यवहार से निश्चय होता - ऐसा कहो तो अनेकांत, अन्यथा अेकांत... परंतु प्रभु सुन तो सही, तुम्हें एकांत और अनेकांत की बातों की खबर नहीं भाई ! आहाहा ! ***अपने द्रव्य के आश्रय से हुई निर्मल पर्याय उसे पर की अपेक्षा नहीं एवं स्व की अपेक्षा है यह अनेकांत है। त्रिकाली की अपेक्षा है परंतु पर की अपेक्षा नहीं यह अनेकांत है।*** आहाहा ! अकेला वीतरागभाव रटा है, हाँ ? आहाहा ! सम्यग्दर्शन यह वीतरागी पर्याय है। सम्यग्ज्ञान यह वीतरागी पर्याय है। ***स्वरूपाचरण, अंदर स्थिर होना यह भी वीतरागी अनंतानुबंधी के अभावरूप वीतरागी पर्याय है। आहाहाहा ! उसे भी वहाँ मिथ्यात्व और अनंतानुबन्धी का अभाव हुआ इसलिये यह पर्याय हुई ऐसी अपेक्षा है ही नहीं उसे। है ही नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ?***

इसलिये इसके वीर्यगुण को लो अकार्यकारण नामक गुण को लो, यह दोनों गुण है, वीतरागी स्वरूप है। जैसे स्वयं जिनस्वरूप है उसके गुण भी वीतरागी स्वरूप है। आहाहाहा ! उसका आश्रय लेना... यह पर्याय आश्रय ले, अर्थात द्रव्य और पर्याय दोनों सिद्ध हो गये। ***कथंचित नित्य है और कथंचित अनित्य है। आहाहा ! और अनित्य है यह नित्य का निर्णय करती है, वीतरागी पर्याय जो अनित्य है यह त्रिकाली नित्य द्रव्य का निर्णय करती है। आहाहाहा ! निर्णय करना यह कहीं नित्य में नहीं। नित्य तो त्रिकाली एकरूप है। आहाहाहा ! नित्य का आदर किया वही पर्याय आ गई। आहाहाहा !***

वीतराग मार्ग बापू कहीं (अन्य) है नहीं, वीतराग... संप्रदाय में अभी विवाद उठा है। आहा ! मूल की पहले से खबर न लगे। आहाहा ! कहो बाबूभाई ! - ऐसा मार्ग है। जिनभगवान का वचन उसमें जो रमते हैं अर्थात इस वाणी में - ऐसा आया, प्रभु ! तुम जिनस्वरूप हो न ! आहा ! हमने जिनस्वरूपी पर्याय प्रगट की, परंतु तुम जिनस्वरूप ही हो। क्योंकि जिनस्वरूपी पर्याय हुई, यह कहाँ से आयी ? जिनस्वरूपमें से आये कि कहीं रागमें से कि परमें से आये ? आहाहा ! इसलिए - ऐसा कहा, इस वाणी में - ऐसा आया कि जो तुम्हारा जिनस्वरूप है प्रभु, वह उपादेय है। इन भाई ने - ऐसा कहा न यह कलश टीकाकार ने, कलश टीकाकार ने जिनवचन का अर्थ यह किया कि कल चला था हिन्दी में। आहाहा ! `जिनवचसिरमन्ते' इसका अर्थ ? ***जिनवचन में जो त्रिकाली जिनस्वरूप भगवान उसे आदरणीय और उपादेय किया। उसमें रमना यह जिनवचन में रमना कहलाता है।*** आहाहा ! लोजिक से न्याय से भी यह बात सिद्ध होती है परंतु मनुष्यों को अपना पक्ष छोड़ना नहीं। इसलिये कहा न इसमें `घट-घट अंतर जिन बसें और घट-घट अंतर जैन।' यह जिन को

माने वह जैन। यह जिनस्वरूपी वीतरागी, उसे अनुभवे और माने वह जैन। यह घट-घट में जैन है यह बाहर में कहीं नहीं। आहाहा ! अब हम जैन है स्थानकवासी जैन हैं, देरावासी जैन... अब छोड़ो न बात सभी। आहाहा !

जैन तो परमेश्वर उसे कहते है जिनस्वरूपी प्रभु तुम उसका आदर करो, पर्याय में तब तुम जैन हो। जिनस्वरूपी तो था ही, परंतु पर्याय में तुमने आदर किया, तब तुम जैन हो गये। जिन से जैन तुम हो गये अब। आहाहा ! अरे ! यह बात थी नहीं हो ! लोग बिचारे कहाँ गये होंगे ? आहाहा ! अरे..रे ! भगवान है यह। आहाहा ! एक कुत्ता अभी रोता था, तब लोग - ऐसा कहते हैं न वह जम को देखता है। इसमें क्या ? उसे इस जाति का शोक आ जाता है। आहाहा ! रोता था खूब रोता था। अरे भगवान ! तुम भगवान हो न प्रभु ! यह क्या है तुम्हें यह। आहाहा ! अरे ! तुम्हें खबर नहीं तुम्हें। आहाहा ! यह आवाज और शरीर और यह कहीं तुम नहीं। आहाहा ! यह आवाज और शरीर यह कहीं तुम नहीं। आहाहा ! यहाँ तो राग का विकल्प यह आत्मा नहीं। दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का विकल्प उठे ब्रह्मचर्य पालने का विकल्प उठे, यह भी आत्मा का नहीं। आहाहा ! कारण कि विकल्प राग है और आत्मा तो वीतराग जिनस्वरूप है। आहाहा ! वाणी बापा वीतराग की... आहाहा !

यह अकार्यकारण गुण से लो, शुक्र (वीर्य) गुण से लो, आहाहा ! ***कोई भी गुण है उसकी पर्याय का कारण वह द्रव्य है। समझे कुछ ? अकेला गुण नहीं। गुण परिणमता है - ऐसा नहीं लिया। चिद्विलास में आया था भाई ! द्रव्य परिणमता है। आहाहा ! चिद्विलास में। कहीं गुण पृथक् है ? द्रव्य पूरा द्रव्य है जिनस्वरूपी प्रभु ! उसका आदर करनेपर सारा द्रव्य वीतरागी पर्यायरूप परिणमित होता है !*** आहाहा ! समझे कुछ ? समझ में आये इतना समझो प्रभु। अमृत की वाणी वीतराग की यह है। इसमें कहीं हेरफेर करे तो कहीं चले - ऐसा नहीं। आहाहा !

यह जिन भगवान का वचन, उसमें पुरुष प्रीति सहित अभ्यास करे - अर्थात रुचि सहित उसमें स्थिर हो अंदर। आहाहा ! आनंद का सागर भगवान, यह आनंद भी जिनस्वरूप है, वीतरागस्वरूपी, वीतरागी आनंद है। यह ज्ञान अंदर है, वीतरागी ज्ञान है, आनंद भी वीतरागी आनंद है, वीर्य यह वीतरागी वीर्य है। आहाहाहा ! अनंता गुण वीतरागी गुण स्वरूप है यह। ऐसे भगवान में जो कोई रमता है। अर्थात ध्रुव है उसमें रमना... ध्रुव तो ध्रुव है। ***द्रव्य तो द्रव्य है। परंतु उसमें जो रमती है यह पर्याय है। आहाहा ! स्वसन्मुख होकर उसमें रमती है। वह जिनवचन में रमते हैं - ऐसा कहा जाता है।*** आहाहा ! राग की क्रियायें करके मानते है कि हम कहीं

त्यागी हुए। समकित के त्यागी हुए, धर्म के त्यागी हुए। आहाहाहा ! जिसमें राग नहीं उसमें राग का त्याग करना यह वस्तु में नहीं। समझे कुछ ? आहाहा ! जहाँ स्वरूप में राग नहीं अब राग का त्याग करना यह कहाँ है ? आहाहा !

यह कैसे कहा परंतु यह ? क्योंकि जिनस्वरूप प्रभु है। उसके आश्रय से तो वीतरागता होती है। आहाहा ! इसे राग करना है या छोड़ना है, यह कहाँ रहा ? आहाहा ! ***जिनस्वरूप का आश्रय करनेपर वीतरागी (पर्याय) हुई यह राग का उदय छूट गया। उसने छोड़ा नहीं, छोड़ना नहीं, उसमें कहाँ है जो छोड़ना है ? यह आया है न ३४वी गाथा में, कि राग का त्याग भी परमार्थ से आत्मा में नहीं।*** आहाहा ! यह तो थोड़ा बाहर का त्याग करके हमने त्याग किया न, मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहाहा ! मिथ्यात्व को दृढ करता है, अनंत संसार को, गजब बात है बापा ! मार्ग की पद्धती ऐसी है। आहाहा ! अरे पुरुषो रमते हैं, उसकी व्याख्या की।स्वरूप जो जिनस्वरूप है उसकी रुचि करके... रुचि अनुयायी वीर्य। जिसे रुचि हुई भगवान पूर्णानंद मैं हूँ। वीतराग स्वरूप हूँ। ऐसी रुचि हुई तो उसके अनुसार उसका वीर्य वहाँ काम करे। आहा ! राग में काम नहीं करे। आहाहा !

व्यवहार को उत्पन्न करे यह आत्मा नहीं। आहाहा ! राग है इसमें कहाँ राग था कि उसे उत्पन्न करे ? आहाहा ! परंतु यहाँ - ऐसा कहा है कि जिसने जिनस्वरूप का आश्रय करके वीतरागी पर्याय प्रगट करके, उसे व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान अर्थात ? कि उसकी ज्ञान की पर्याय ही ऐसी हुई है कि स्व का ज्ञान होनेपर यह पर्याय ही ऐसी प्रगटी है। कि स्व को जाने और व्यवहार से राग को जाने, ऐसी ही पर्याय प्रगटी है। राग को करे और राग से हो यह वस्तु स्वरूप में नहीं। उसकी पर्याय के स्वरूप में नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग है। कहो कांतिभाई ! वहाँ कहीं पिलास्टिक के क्रस्टिल में यह कोई बात सुनने मिले - ऐसी नहीं वहाँ यह। आहाहा ! अरे ! जैनधर्म के नाम से लोगों ने तो कहीं का कहीं कर डाला है। आहाहा ! पहले बाह्य त्याग करो, थोड़ा यह छोड़ो वह छोड़ो। (श्रोता :- भूमिका साफ करते है) भूमिका साफ करते हैं कि बिगाड़ते है ? सूक्ष्म बात है बापू ! बहुत बातें। ***राग का त्याग भी आत्मा में नहीं। उसकी पर्याय में राग का त्याग भी नहीं। राग का त्याग कहना यह परमार्थ नहीं, नाम मात्र कथन है।*** आहाहा !

स्वरूप जहाँ चिदानंद जिनस्वरूप है, उसका आश्रय लेकर जो वीतरागता हुई, वहाँ राग की उत्पत्ती इतनी न हुई, उसे राग का नाश किया - ऐसे निमित्त से कथन है। आहाहा ! राग का त्याग किया यह निमित्त से कथन है। वस्तु ऐसी नहीं। तब पर का त्याग तो है ही कहाँ आत्मा में ? ***पर के त्याग ग्रहण रहित***

तो इसका गुण है। क्या कहा ? आहाहा ! त्याग उपादान त्याग, ग्रहण करना और छोड़ना एक-एक रजकण को, शरीर को, वाणी को, पैसा को किसी का भी ग्रहण करना और छोड़ना इससे रहित इसका गुण है। अब इस गुण की पर्याय भी पर के त्याग और ग्रहण रहित ही है। क्या कहा ? समझ में आया ? आहाहा ! यह तो वीतराग का धर्म क्या है, यह बात है बापा ! शेष भटकने के रास्ते तो चल रहे हो सारे दिन। चारगति में कहाँ जाकर गिरोगे ? आहाहा !

क्या कहा ? कि राग का त्याग करना... त्याग जीव ने किया पर्याय में हो... आहाहाहा ! ***क्योंकि राग स्वरूप में नहीं, फिर स्वरूप में नहीं यह राग त्यागना है यह रहा कहाँ ? यह तो वीतराग स्वरूप है। आहाहा ! वीतराग स्वरूप का आश्रय लेता तो वीतरागी पर्याय हो बस। आहाहा ! यह इसकी पर्याय, इस पर्यायने राग का त्याग किया यह भी वस्तु के स्वरूप में, पर्याय में नहीं - ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसके गुणों में भी वीतरागता है। तब इसकी पर्याय में वीतरागता आयी, राग का त्याग - ऐसा इसमें है ही नहीं आहाहा !*** पण्डितजी ! ऐसी बात है। आहाहाहा ! जिसका गुण ही वीतराग है उसके गुण की, गुण की वीतराग पर्याय होती है। यह राग को करे ? और राग को छोड़े ? पर का त्याग ग्रहण तो नहीं ही। आहाहा !

पर का त्याग करके कपड़े छोड़ करके प्रदर्शन करना कि हम कहीं त्यागी हैं। यह बहुत कठिन बात है बापू ! आहाहा ! वीतराग मार्ग को पहचानने में कोई अपूर्व प्रयत्न चाहिए। बापू ! आहाहा ! यह कहीं लड्डू खाना नहीं। आहाहा !

यही कहते हैं देखो ! `प्रचुर अभ्यास करते है' अर्थात की वस्तु की रुचि सहित अंदर एकाग्रता का अभ्यास करते हैं। आहाहा ! वीतराग जिनस्वरूप की रुचि, क्योंकि यह वीतराग मूर्ति ही जिनबिम्ब है प्रभु ! आहाहा ! ***उसकी रुचिपूर्वक जो अंदर में अभ्यास करते है एकाग्रता का, वह अपने-आप अन्य कारण बिना, यह तो इसके कारण बिना मिथ्यात्व का तो अपने कारण नाश होता है। यह मिथ्यात्व की प्रकृति का उस समय उदय नहीं होना और नाश होना उसकी प्रकृति का स्वभाव है। आहाहा ! और मिथ्यात्व भाव का... यह यहाँ जब सम्यक् आश्रय किया वहाँ मिथ्यात्वभाव की उत्पत्ती हुई नहीं, यही मिथ्यात्वभाव का त्याग किया - ऐसा निमित्त से व्यवहार से कथन है। आहाहाहाहा !***

`ये स्वयं वान्त मोहा' अर्थात कि राग अपने आप छूट जाता है प्रकृति भी उसके कारण छूट जाता हैं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! स्वयं है न ? आत्मा छोड़ता है, इसलिये छूट जाता है - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! भगवानआत्मा अपने जिनबिम्ब का जहाँ आश्रय लिया, जिनबिम्ब - ऐसा स्वरूप जो भगवानआत्मा का, उसके नजदीक

गया और आश्रय लिया एवं अवलम्बन लिया, आहाहा ! ऐसी पर्याय ने राग को वमा है और राग नाश किया है - ऐसा भी नहीं, यह तो अपने-आप नाश हो जाती है - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

`स्वयं वान्त मोहः' मोह का मिथ्यात्व का परिणमन और स्वयं अपने आप उत्पन्न होता नहीं। प्रकृति तो अपने आप नाश होती है, यह तो परमाणु है उसका कहीं आत्मा से संबंध नहीं। आहाहा ! शुद्ध चैतन्यद्रव्य का जहाँ अवलम्बन लिया, उसे जहाँ आश्रय (लेकर) उपादेय माना, तव वह दृष्टि में सम्यक् चैतन्य की दशा हुई, वहाँ उसे राग का छूटना यह राग अपने कारण छूट जाता है और प्रकृति तो उसके द्वारा ही वहाँ नाश होने योग्य थी वह नाश होती है। उसका यह वीतराग पर्याय का, निमित्त और राग का नाश होना यह उपादान उसका, निमित्त ने कहीं कुछ किया नहीं, उसने नाश किया (नहीं) - ऐसा कहना है। आहाहा ! यह निमित्त का झगड़ा है न ? इतना तो स्वीकारा है कि निमित्त तो सोनगढ़वाले मानते हैं परंतु इससे पर में हो - ऐसा नहीं। आहाहा ! अरे बापू ! सोनगढ़वालों की बात नहीं यह, यह तो वीतराग के घर की बातें हैं। कहो छोटाभाई ! - ऐसा मार्ग (है)।

`स्वयं वान्त मोहाः' शुद्ध चैतन्य स्वरूप भगवान, उसका जहाँ आश्रय लिया, उपादेय माना, यह मान्यता की पर्याय जहाँ स्वतंत्र प्रगट हुई उस समय मान्यता की पर्याय मात्र निमित्त और मिथ्यात्व का नाश हुआ वह उसके कारण उपादान के कारण। प्रकृति (कर्म) का नाश हुआ उसके कारण। आहाहा ! कलश गंभीर-गंभीर, कलश है यह तो बापू ! आहाहा !

यह `अतिशयरूप परम ज्योति' भगवान चैतन्यज्योति जलहलजिनबिम्ब था, उसका यह अंदर में आश्रय लिया आदरणीय (किया) वहाँ चैतन्यज्योति पर्याय में प्रगट हुई, यह तो चैतन्य के प्रकाश का पूर है आत्मा तो इसमें राग भी नहीं और शरीर नहीं क्रिया क्रिया इसमें है ही नहीं। आहाहा ! उसे कर्म का नाश करना यह इसके स्वरूप में नहीं, आहाहा ! घाति कर्म का नाश करके भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया - ऐसा कथन आता ना - आहाहा ! ***भाव घाती कर्म का नाश करना यह भी स्वरूप में नहीं, कारण कि यह वीतराग मूर्तिप्रभु जहाँ है और जब पर्याय ने इसका आश्रय लिया तब वीतरागी पर्याय हुई, इसमें राग की पर्याय का वीतरागी पर्याय ने नाश किया - ऐसा भी नहीं, स्वयं अपनी योग्यता से राग और कर्म नाश हो जाते है। आहाहा !***

विशेष कहा जायेगा...

- प्रमाण वचन गुरुदेव !